प्राचीन ग्रंथों में गणित पढ़ाने के तौर तरीके बहुत रोचक थे

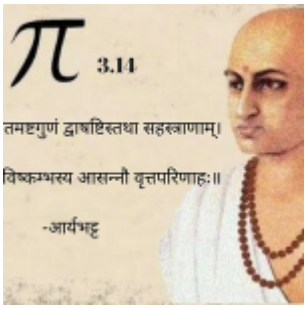

गणित शास्त्र की परम्परा भारत में बहुत प्राचीन काल से ही रही है। गणित के महत्व को प्रतिपादित करने वाला एक श्लोक प्राचीन काल से प्रचलित है।

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्।। (याजुष ज्योतिषम)
अर्थात् जैसे मोरों में शिखा और नागों में मणि सबसे ऊपर रहती है, उसी प्रकार वेदांग और शास्त्रों में गणित सर्वोच्च स्थान पर स्थित है।

ईशावास्योपनिषद् के शांति मंत्र में कहा गया है-

[illegible]: [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible]।।

यह मंत्र मात्र आध्यात्मिक वर्णन नहीं है, अपितु इसमें अत्यंत महत्वपूर्ण गणितीय संकेत छिपा है, जो समग्र गणित शास्त्र का आधार बना। मंत्र कहता है, यह भी पूर्ण है, वह भी पूर्ण है, पूर्ण से पूर्ण की उत्पत्ति होती है, तो भी वह पूर्ण है और अंत में पूर्ण में लीन होने पर भी अवशिष्ट पूर्ण ही रहता है। जो वैशिष्ट्य पूर्ण के वर्णन में है वही वैशिष्ट्य शून्य व अनंत में है। शून्य में शून्य जोड़ने या घटाने पर शून्य ही रहता है। यही बात अनन्त की भी है।

हमारे यहां जगत के संदर्भ में विचार करते समय दो प्रकार के चिंतक हुए। एक इति और दूसरा नेति। इति यानी पूर्णता के बारे में कहने वाले। नेति यानी शून्यता के बारे में कहने वाले। यह शून्य का आविष्कार गणना की दृष्टि से, गणित के विकास की दृष्टि से अप्रतिम रहा है।

भारत गणित शास्त्र का जन्मदाता रहा है, यह दुनिया भी मानने लगी है। यूरोप की सबसे पुरानी गणित की पुस्तक "कोडेक्स विजिलेन्स" है। यह पुस्तक स्पेन की राजधानी मेड्रिड के संग्राहलय में रखी है। इसमें लिखा है-

"गणना के चिन्हों से (अंकों से) हमें यह अनुभव होता है कि प्राचीन हिन्दुओं की बुद्धि बड़ी पैनी थी

तथा अन्य देश गणना व ज्यामिति तथा अन्य विज्ञानों में उनसे बहुत पीछे थे। यह उनके नौ अंकों से प्रमाणित हो जाता है, जिनकी सहायता से कोई भी संख्या लिखी जा सकती है।"

नौ अंक और शून्य के संयोग से अनंत गणनाएं करने की सामर्थ्य और उसकी दुनिया के वैज्ञानिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका की वर्तमान युग के विज्ञानी लाप्लास तथा अल्बर्ट आईंस्टीन ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

भारतीय अंकों की विश्व यात्रा की कथा विश्व के अनेक विद्वानों ने वर्णित की है। इनका संक्षिप्त उल्लेख पुरी के शंकराचार्य श्रीमत् भारती कृष्णतीर्थ जी ने अपनी गणित शास्त्र की अद्‌भुत पुस्तक "वैदिक मैथेमेटिक्स" की प्रस्तावना में किया है।

वे लिखते हैं "इस संदर्भ में यह कहते हर्ष होता है कि कुछ तथाकथित भारतीय विद्वानों के विपरीत आधुनिक गणित के मान्य विद्वान यथा प्रो. जी.पी. हाल्स्टैंड. प्रो. गिन्सबर्ग, प्रो. डी. मोर्गन, प्रो. हटन- जो सत्य के अन्वेषक तथा प्रेमी हैं, ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया और प्राचीन भारत द्वारा गणितीय ज्ञान की प्रगति में दिए गए अप्रतिम योगदान की निष्कपट तथा मुक्त कंठ से भूरि-भूरि प्रशंसा की है।"

इनमें से कुछ विद्वानों के उदाहरण इस विषय में स्वत : ही विपुल प्रमाण प्रस्तुत करेंगे।
प्रो. जी.पी. हाल्स्टेंड अपनी पुस्तक "गणित की नींव तथा प्रक्रियाएं" के पृष्ठ २० पर कहते हैं, "शून्य के संकेत के आविष्कार की महत्ता कभी बखानी नहीं जा सकती है।" "कुछ नहीं" को न केवल एक नाम तथा सत्ता देना वरन् एक शक्ति देना हिन्दू जाति का लक्षण है, जिनकी यह उपज है। यह निर्वाण को डायनमो की शक्ति देने के समान है। अन्य कोई भी एक गणितीय आविष्कार बुद्‌धिमत्ता तथा शक्ति के सामान्य विकास के लिए इससे अधिक प्रभावशाली नहीं हुआ।
इसी संदर्भ में बी.बी.दत्त अपने प्रबंध "संख्याओं को व्यक्त करने की आधुनिक विधि (इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, अंक ३, पृष्ठ ५३०-४५०) में कहते हैं "हिन्दुओं ने दाशमलविक पद्धति बहुत पहले अपना ली थी। किसी भी अन्य देश की गणितीय अंकों की भाषा प्राचीन भारत के समान वैज्ञानिक तथा पूर्णता को नहीं प्राप्त कर सकी थी। उन्हें किसी भी संख्या को केवल दस बिंबों की सहायता से सरलता से तथा सुन्दरतापूर्वक व्यक्त करने में सफलता मिली। हिन्दू संख्या अंकन पद्धति की इसी सुन्दरता ने विश्व के सभ्य समाज को आकर्षित किया तथा उन्होंने इसे सहर्ष अपनाया।"
इसी संदर्भ में प्रो. गिन्सबर्ग "न्यू लाइट ऑन अवर न्यूमरल्स" लेख, जो बुलेटिन आफ दि अमेरिकन मैथेमेटिकल सोसायटी में छपा, के पृष्ठ ३६६-३६९ में कहते हैं, "लगभग ७७० ई, सदी में उज्जैन के हिन्दू विद्वान कंक को बगदाद के प्रसिद्ध दरबार में अब्बा सईद खलीफा अल मन्सूर ने आमंत्रित किया। इस तरह हिन्दू अंकन पद्धति अरब पहुंची। कंक ने हिन्दू ज्योतिष विज्ञान तथा गणित अरबी विद्वानों को पढ़ाई। कंक की सहायता से उन्होंने ब्रह्मपुत्र के "ब्रह्म स्फूट सिद्धान्त" का अरबी में अनुवाद किया। ्फ्रांसीसी विद्वान एम.एफ.नाऊ की ताजी खोज यह प्रमाणित करती है कि सातवीं सदी के मध्य में सीरिया में भारतीय अंक ज्ञात थे तथा उनकी सराहना की जाती थी।"
बी.बी. दत्त अपने लेख में आगे कहते हैं "अरब से मिश्र तथा उत्तरी अरब होते हुए ये अंक धीरे-धीरे पश्चिम में पहुंचे तथा ग्यारहवीं सदी में पूर्ण रूप से यूरोप पहुंच गए। यूरोपियों ने उन्हें अरबी अंक कहा, क्योंकि उन्हें अरब से मिले। किन्तु स्वयं अरबों ने एकमत से उन्हें हिन्दू अंक (अल-अरकान-अलहिन्द)

कहा"।
जब विश्व १०,००० जानता था, तब भारत ने अनंत खोजा
संस्कृत का एकं हिन्दी में एक हुआ, अरबी व ग्रीक में बदल कर 'वन' हुआ। शून्य अरबी में सिफर हुआ, ग्रीक में जीफर और अंग्रेजी में जीरो हो गया। इस प्रकार भारतीय अंक दुनिया में छाये।

अंक गणित- अंकों का क्रम से विवेचन यजुर्वेद में मिलता है – सविता प्रथमेऽहन्नग्नि र्द्वितीये वायुस्तृतीयऽआदिचतुर्थे चन्द्रमा : पञ्चमऽऋतु :षष्ठे मरूत : सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे। मित्रो नवमे वरुणो दशमंऽइन्द्र एकादशे विश्वेदेवा द्वादशे। (यजुर्वेद-३९-६)। इसमें विशेषता है अंक एक से बारह तक क्रम से दिए हैं।

गणना की दृष्टि से प्राचीन ग्रीकों को ज्ञात सबसे बड़ी संख्या मीरीयड थी, जिसका माप १०४ यानी १०,००० था। और रोमनों को ज्ञात सबसे बड़ी संख्या मिली थी, जिसकी माप १०३ यानी १००० थी। जबकि भारतवर्ष में कई प्रकार की गणनाएं प्रचलित थीं। गणना की ये पद्धतियां स्वतंत्र थीं तथा वैदिक, जैन, बौद्ध ग्रंथों में वर्णित इन पद्धतियों के कुछ अंकों में नाम की समानता थी परन्तु उनकी संख्या राशि में अन्तर आता था।

प्रथम दशगुणोत्तर संख्या- अर्थात् बाद वाली संख्या पहले से दस गुना अधिक। इस संदर्भ में यजुर्वेद संहिता के १७वें अध्याय के दूसरे मंत्र में उल्लेख आता है। जिसका क्रम निम्नानुसार है- एक, दस, शत, सहस्र, अयुक्त, नियुक्त, प्रयुक्त, अर्बुद्ध, न्यर्बुद्र, समुद्र, मध्य, अन्त और परार्ध। इस प्रकार परार्ध का मान हुआ १०१२ यानी दस खरब।

द्वितीय शतगुणोत्तर संख्या-अर्थात् बाद वाली संख्या पहले वाली संख्या से सौ गुना अधिक। इस संदर्भ में ईसा पूर्व पहली शताब्दी के 'ललित विस्तर' नामक बौद्ध ग्रंथ में गणितज्ञ अर्जुन और बोधिसत्व का वार्तालाप है, जिसमें वह पूछता है कि एक कोटि के बाद की संख्या कौन-सी है ? इसके उत्तर में बोधिसत्व कोटि यानी १०७ के आगे की शतगुणोत्तर संख्या का वर्णन करते हैं।

१०० कोटि, अयुत, नियुत, कंकर, विवर, क्षोम्य, निवाह, उत्संग, बहुल, नागबल, तितिलम्ब, व्यवस्थान प्रज्ञप्ति, हेतुशील, करहू, हेत्विन्द्रिय, समाप्तलम्भ, गणनागति, निखध, मुद्राबाल, सर्वबल, विषज्ञागति, सर्वज्ञ, विभुतंगमा, और तल्लक्षणा। अर्थात् तल्लक्षणा का मान है १०५३ यानी एक के ऊपर ५३ शून्य के बराबर का अंक।

तृतीय कोटि गुणोत्तर संख्या-कात्यायन के पाली व्याकरण के सूत्र ५१, ५२ में कोटि गुणोत्तर संख्या का उल्लेख है। अर्थात् बाद वाली संख्या पहले वाली संख्या से करोड़ गुना अधिक।

इस संदर्भ में जैन ग्रंथ 'अनुयोगद्वार' में वर्णन आता है। यह संख्या निम्न प्रकार है-कोटि-कोटि, पकोटी, कोटयपकोटि, नहुत, निन्नहुत, अक्खोभिनि, बिन्दु, अब्बुद, निरष्बुद, अहह, अबब, अतत, सोगन्धिक, उप्पल कुमुद, पुण्डरीक, पदुम, कथान, महाकथान और असंख्येय। असंख्येय का मान है १०१४० यानी एक के ऊपर १४० शून्य वाली संख्या।

उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में अंक विद्या कितनी विकसित थी, जबकि विश्व १०,००० से अधिक संख्या नहीं जानता था।

उपर्युक्त संदर्भ विभूति भूषण दत्त और अवधेश नारायण सिंह द्वारा लिखित पुस्तक 'हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास' में विस्तार के साथ दिए गए हैं।

आगे चलकर देश में आर्यभट्ट, भास्कराचार्य, श्रीधर आदि अनेक गणितज्ञ हुए। उनमें भास्कराचार्य ने ११५० ई. में 'सिद्धान्त शिरोमणि' नामक ग्रंथ लिखा। इस महान ग्रंथ के चार भाग हैं। (१) लीलावती (२) बीज गणित (३) गोलाध्याय (४) ग्रह गणित।

श्री गुणाकर मुले अपनी पुस्तक 'भास्कराचार्य' में लिखते हैं कि भास्कराचार्य ने गणित के मूल आठ कार्य माने हैं-

(१) संकलन (जोड़) (२) व्यवकलन (घटाना) (३) गुणन (गुणा करना) (४) भाग (भाग करना) (५) वर्ग (वर्ग करना) (६) वर्ग मूल (वर्ग मूल निकालना) (७) घन (घन करना) (८) घन मूल (घन मूल निकालना)। ये सभी गणितीय क्रियाएं हजारों वर्षों से देश में प्रचलित रहीं। लेकिन भास्कराचार्य लीलावती को एक अदभुत बात बताते हैं कि 'इन सभी परिक्रमों के मूल में दो ही मूल परिकर्म हैं- वृद्धि और ह्रास।' जोड़ वृद्धि है, घटाना ह्रास है। इन्हीं दो मूल क्रियाओं में संपूर्ण गणित शास्त्र व्याप्त है।'

आजकल कम्प्यूटर द्वारा बड़ी से बड़ी और कठिन गणनाओं का उत्तर थोड़े से समय में मिल जाता है। इसमें सारी गणना वृद्धि और ह्रास के दो चिन्ह (अ,-) द्वारा होती है। इन्हें विद्युत संकेतों में बदल दिया जाता है। फिर सीधा प्रवाह जोड़ने के लिए, उल्टा प्रवाह घटाने के लिए। इसके द्वारा विद्युत गति से गणना होती है।

आजकल गणित एक शुष्क विषय माना जाता है। पर भास्कराचार्य का ग्रंथ 'लीलावती' गणित को भी आनंद के साथ मनोरंजन, जिज्ञासा आदि का सम्मिश्रण करते हुए कैसे पढ़ाया जा सकता है, इसका नमूना है। लीलावती का एक उदाहरण देखें-

'निर्मल कमलों के एक समूह के तृतीयांश, पंचमांश तथा षष्ठमांश से क्रमश : शिव, विष्णु और सूर्य की पूजा की, चतुर्थांश से पार्वती की और शेष छ: कमलों से गुरु चरणों की पूजा की गई। अये, बाले लीलावती, शीघ्र बता कि उस कमल समूह में कुल कितने फूल थे ?' उत्तर-१२० कमल के फूल।

वर्ग और घन को समझाते हुए भास्कराचार्य कहते हैं 'अये बाले, लीलावती, वर्गाकार क्षेत्र और उसका क्षेत्रफल वर्ग कहलाता है। दो समान संख्याओं का गुणन भी वर्ग कहलाता है। इसी प्रकार तीन समान संख्याओं का गुणनफल घन है और बारह कोष्ठों और समान भुजाओं वाला ठोस भी घन है।'

'मूल' शब्द संस्कृत में पेड़ या पौधे की जड़ के अर्थ में या व्यापक रूप में किसी वस्तु के कारण, उद्गम अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसलिए प्राचीन गणित में वर्ग मूल का अर्थ था 'वर्ग का कारण या उद्गम अर्थात् वर्ग एक भुजा'। इसी प्रकार घनमूल का अर्थ भी समझा जा सकता है। वर्ग तथा घनमूल निकालने की अनेक विधियां प्रचलित थीं।

इसी प्रकार भास्कराचार्य त्रैराशिक का भी उल्लेख करते हैं। इसमें तीन राशियों का समावेश रहता है। अत : इसे त्रैराशिक कहते हैं। जैसे यदि प्र (प्रमाण) में फ (फल) मिलता है तो इ (इच्छा) में क्या मिलेगा ?

त्रैराशिक प्रश्नों में फल राशि को इच्छा राशि से गुणा करना चाहिए और प्राप्त गुणनफल को प्रमाण राशि से भाग देना चाहिए। इस प्रकार भाग करने से जो परिणाम मिलेगा वही इच्छा फल है। आज से दो हजार वर्ष पूर्व त्रैराशिक नियम का भारत में आविष्कार हुआ। अरब देशों में यह नियम आठवीं शताब्दी में पहुंचा। अरबी गणितज्ञों ने त्रैराशिक को 'फी राशिकात अल्-हिन्द' नाम दिया। बाद में यह यूरोप में फैला जहां इसे गोल्डन रूल की उपाधि दी गई। प्राचीन गणितज्ञों को न केवल त्रैराशिक अपितु पंचराशिक, सप्तराशिक व नवराशिक तक का ज्ञान था।

बीज गणित-बीज गणित की उत्पत्ति का केन्द्र भी भारत ही रहा है। इसे अव्यक्त गणित या बीज गणित कहा जाता था। अरबी विद्वान मूसा अल खवारिज्मी ने नौंवी सदी में भारत आकर यह विद्या सीखी और एक पुस्तक 'अलीजेब ओयल मुकाबिला' लिखी। वहां से यह ज्ञान यूरोप पहुंचा।

भारत वर्ष में पूर्व काल में आपस्तम्ब, बोधायन, कात्यायन तथा बाद में ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य आदि गणितज्ञों ने इस पर काम किया। भास्कराचार्य कहते हैं, बीज गणित- का अर्थ है अव्यक्त गणित, इस अव्यक्त बीज का आदिकारण होता है, व्यक्त। इसलिए सबसे पहले 'लीलावती' में इस व्यक्त गणित अंकगणित का चर्चा की। बीजगणित में भास्कराचार्य शून्य और अनंत की चर्चा करते हैं।
वधा दौ वियत् खं खेनधाते,

खहारो भवेत् खेन भक्तश्च राशि :।

अर्थात् यदि शून्य में किसी संख्या का भाग गिया जाए या शून्य को किसी संख्या से गुणा किया जाए तो फल शून्य ही आता है। यदि किसी संख्या में शून्य का भाग दिया जाए, तो परिण ख हर (अनन्त) आता है।

शून्य और अनंत गणित के दो अनमोल रत्न हैं। रत्न के बिना जीवन चल सकता है, परन्तु शून्य और अनंत के बिना गणित कुछ भी नहीं।

शून्य और अनंत भौतिक जगत में जिनका कहीं भी नाम निशान नहीं, और जो केवल मनुष्य के मस्तिष्क की उपज है, फिर भी वे गणित और विज्ञान के माध्यम से विश्व के कठिन से कठिन रहस्यों को स्पष्ट करते हैं।

ब्रह्मगुप्त ने विभिन्न 'समीकरण' खोज निकाले। इन्हें ब्रह्मगुप्त ने एक वर्ण, अनेक वर्ण, मध्यमाहरण और मापित नाम दिए। एक वर्ण समीकरण में अज्ञात राशि एक तथा अनेक वर्ण में अज्ञात राशि एक से अधिक होती थी।

रेखा गणित-रेखा गणित की जन्मस्थली भी भारत ही रहा है। प्राचीन काल से यज्ञों के लिए वेदियां बनती थीं। इनका आधार ज्यामिति या रेखागणित रहता था। पूर्व में बोधायन एवं आपस्तम्ब ने ईसा से

८०० वर्ष पूर्व अपने शुल्ब सूत्रों में वैदिक यज्ञ हेतु विविध वेदियों के निर्माण हेतु आवश्यक स्थापत्यमान दिए हैं।

किसी त्रिकोण के बराबर वर्ग खींचना, ऐसा वर्ग खींचना जो किसी वर्ग का द्विगुण, त्रिगुण अथवा एक तृतीयांश हो। ऐसा वृत्त बनाना, जिसका क्षेत्र उपस्थित वर्ग के क्षेत्र के बराबर हो। उपर्युक्त विधियां शुल्ब सूत्र में बताई गई हैं।

किसी त्रिकोण का क्षेत्रफल उसकी भुजाओं से जानने की रीति चौथी शताब्दी के 'सूर्य सिद्धान्त' ग्रंथ में बताई गई है। इसका ज्ञान यूरोप को क्लोबियस द्वारा सोलहवीं शताब्दी में हुआ।

साभार –http://physicsandveda.blogspot.com/ से